

व्यावहारिक मोहब्बतें और मौखिक नफरतें

रिटेल एफडीआई पर केंद्र सरकार के यू-टर्न के मायने क्या हैं

भारतीय जनता पार्टी की मोदी सरकार ने खुदरा व्यापार में 51 प्रतिशत एफडीआई के पूर्ववर्ती सरकार के निर्णय को जारी रखने का फैसला किया है। कभी इसी भाजपा ने 8 दिन संसद रोककर, हर राज्य की राजधानी में बड़ा प्रदर्शन आयोजित कर यह कहा था कि वह सत्ता में आई तो तुरंत रिटेल सेक्टर में एफडीआई का फैसला वापस ले लेगी। भाजपा के चुनाव घोषणापत्र और चुनावी जुमलों में यह नारेबाजी जारी रही। 20 सितंबर, 2012 को 48 छोटी-बड़ी पार्टियों के साथ भारत बंद का आयोजन कर भाजपा ने इस नीति का विरोध किया था और एक मंच पर भाजपा-कम्युनिस्ट, सोशलिस्ट सब साथ आए थे।

आखिर अपने एक साल पूरे करने जा रही भाजपा सरकार की ऐसी क्या मजबूरी है कि उसने रिटेल एफडीआई को जारी रखने का फैसला किया है? यह समझना मुश्किल है कि क्या उस समय अरूण जेटली, सुषमा स्वराज, आडवानीजी ने जो कुछ कहा था वह सच था या आज जब वे सत्ता में होते हुए इसे आगे बढ़ा रहे हैं। स्वयं प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी इस बात के खिलाफ थे। भाजपा पर भरोसा कर उसे वोट देने वाले इन फैसलों से ठगा हुआ सा महसूस कर रहे हैं। वैसे भी यह कानून नहीं है, एक नीति है जो एक कैबिनेट के फैसले से रद्द हो सकती है। इसके लिए राज्यसभाई बहुमत की जरूरत नहीं है। सरकार चाहती तो इसे एक पल में रद्द कर सकती थी। रिटेल में एफडीआई का सवाल वैसे भी राज्य की सूची में है। उस समय 11 राज्यों ने इसे स्वीकार किया था और भाजपा शासित राज्यों ने इसे स्वीकारने से मना किया था। भूमि अधिग्रहण कानून को अलोकप्रियता सहकर भी बदलने के लिए आतुर मोदी सरकार आखिर रिटेल एफडीआई के फैसले को रद्द करने से क्यों बच रही है, यह एक बड़ा सवाल है।

क्या जब वे 8 दिन लोकसभा रोककर और भारत बंद में शामिल होकर देश का करोड़ों का आर्थिक नुकसान कर रहे थे, तब उन्हें यह अंदाजा नहीं था कि वे सत्ता में आएंगे? आज जब पालिसी का मूल्यांकन करने का समय था तो उसने मनमोहन सरकार की नीति को जस का तस स्वीकार किया है। सैद्धांतिक रूप से चीजों का विरोध करना और व्यावहारिक तरीके से उसे स्वीकारना साफ तौर पर दोहरी राजनीति है, जिसे सराहा नहीं जा सकता। 7 मार्च, 2013 को रामलीला मैदान की रैली में आज के गृहमंत्री राजनाथ सिंह ने यह घोषणा की थी कि वे सत्ता में आते ही इस जनविरोधी नीति को वापस लेंगे। कहा जा रहा है कि सरकार इस नीति को इसलिए वापस नहीं ले सकती कि इससे विदेशों में, निवेशकों में गलत संदेश जाएगा? दूसरी ओर प्रवक्ता यह भी कह रहे हैं हमने किसी को साल भर में रिटेल में एफडीआई के लिए अनुमति नहीं दी है। यह कहां का मजाक है? अगर आप अनुमति नहीं दे रहे हैं, तो इस नीति का लाभ क्या है। सही तो यह है कि सरकार पहले भारत के आम लोगों के बीच अपनी छवि की चिंता करे न कि निवेशकों और वैश्विक छवि की। आम जनता का भरोसा खोकर सरकार दुनिया में अपनी छवि चमका भी ले जाती है तो उसका फायदा क्या है?

हालात यह हैं तमाम राज्यों में होलसेल का लाइसेंस लेकर विदेश कंपनियां रिटेल सेक्टर में फुटकर कारोबार कर रही हैं और लोगों से झूठ बोला जा रहा है। क्या देश की जनता के प्रश्न और सरकार के हित अलग-अलग हैं? पूर्ववर्ती यूपीए सरकार ने जिस छल के साथ बिना चर्चा किए फिर इस नीति को लागू किया, क्या इस व्यवस्था को जनतंत्र कहना उचित होगा? जनभावनाएं खुदरा क्षेत्र में एफडीआई के खिलाफ हैं, तमाम राजनीतिक दल इसके विरोध में हैं किंतु सरकार तयशुदा राह पर चल रही है। शायद इसीलिए राजनीतिक दलों की नैतिकता और ईमानदारी पर सवाल उठते हैं। क्योंकि आज के राजनीतिक दल अपने मुद्दों के प्रति भी ईमानदार नहीं रहे। खुदरा क्षेत्र में एफडीआई का सवाल जिससे 5 करोड़ लोगों की रोजी-रोटी जाने का संकट है, हमारी राजनीति में एक सामान्य सा सवाल है। भाजपा ने कांग्रेस के इस कदम का विरोध करते हुए राजनीतिक लाभ तो ले लिया और आज वह खुद उसी रास्ते पर बढ़ रही है।

याद कीजिए कि आज के राष्ट्रपति और पूर्ववर्ती सरकार के तत्कालीन वित्तमंत्री श्री प्रणव मुखर्जी दिनांक सात दिसंबर, 2011 को संसद में यह आश्वासन देते हैं कि आम सहमति और संवाद के बिना खुदरा क्षेत्र में एफडीआई नहीं लाएंगें। किंतु मनमोहन सरकार अपना वचन भूल गई और चोर दरवाजे से जब संसद भी नहीं चल रही है, खुदरा एफडीआई को देश पर थोप दिया गया। आखिर क्या हमारा लोकतंत्र बेमानी हो गया है? जहां राजनीतिक दलों की सहमति, जनमत का कोई मायने नहीं है। क्या यह मान लिया जाना चाहिए कि राजनीतिक दलों का विरोध सिर्फ दिखावा है?

आप देखें तो राजनीति और अर्थनीति अरसे से अलग-अलग चल रहे हैं। यानि हमारी राजनीति तो देश के भीतर चल रही है किंतु अर्थनीति को चलाने वाले लोग कहीं और बैठकर हमें नियंत्रित कर रहे हैं। यही कारण है कि मुख्यधारा के राजनीतिक दलों में अर्थनीति पर दिखावटी मतभेदों को छोड़ दें तो आम सहमति बन चुकी है। रास्ता वही अपनाया जा रहा है जो नरसिंह राव और मनमोहन सिंह की सरकार ने दिखाया था। उसके बाद आयी तीसरा मोर्चा की सरकारें हो या स्वदेशी की पैरोकार भाजपा की सरकार सबने वही किया जो मनमोहन टीम चाहती है। ऐसे में यह कहना कठिन है कि हम विदेशी राष्ट्रों के दबावों, खासकर अमरीका और कारपोरेट घरानों के प्रभाव से मुक्त होकर अपने फैसले ले पा रहे हैं। अपनी कमजोर सरकारों को गंवाने की हद तक जाकर भी हमारी राजनीति अमरीका और कारपोरेट्स की मिजाजपुर्सी में लगी रही। यह सारा कुछ हम देख चुके हैं। पश्चिमी और अमरीकी मीडिया जिस तरह अपने हितों के लिए सर्तक और एकजुट है, क्या हमारा मीडिया भी उतना ही राष्ट्रीय हितों के लिए सक्रिय और ईमानदार है?

हम देखें तो 1991 की नरसिंह राव की सरकार जिसके वित्तमंत्री मनमोहन सिंह थे ने नवउदारवादी आर्थिक नीतियों की शुरुआत की। तब राज्यों ने भी इन सुधारों को उत्साहपूर्वक अपनाया। लेकिन जनता के गले ये बातें नहीं उतरतीं यानि जन राजनीति का इन कदमों को समर्थन नहीं मिला, सुधारों के चैंपियन आगामी चुनावों में खेत रहे और संयुक्त मोर्चा की सरकार सत्ता में आती है। गजब यह है कि संयुक्त मोर्चा सरकार और उसके वित्तमंत्री पी. चिदंबरम् भी वही करते हैं जो पिछली सरकार कर रही थी। वे भी सत्ता से बाहर हो जाते हैं। फिर अटलबिहारी वाजपेयी की सरकार सत्ता में आती है। उसने तो गजब ढाया। प्रिंट मीडिया में निवेश की अनुमति, केंद्र में पहली बार विनिवेश मंत्रालय की स्थापना की

और जोर-शोर से यह उदारीकरण का रथ बढ़ता चला गया।

यही कारण था कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के विचारक स्व.दत्तोपंत ढेंगड़ी ने तत्कालीन भाजपाई वित्तमंत्री को अनर्थमंत्री तक कह दिया। संघ और भाजपा के द्वंद इस दौर में साफ नजर आए। सरकारी कंपनियां धड़ल्ले से बेची गयीं और मनमोहनी एजेंडा इस सरकार का भी मूलमंत्र रहा। अंततः इंडिया शायनिंग की हवा-हवाई नारेबाजियों के बीच भाजपा की सरकार भी विदा हो गयी। सरकारें बदलती गयीं किंतु हमारी अर्थनीति पर अमरीकी और कारपोरेट प्रभाव कायम रहे। सरकारें बदलने का नीतियों पर असर नहीं दिखा। फिर कांग्रेस लौटती है और देश के दुर्भाग्य से उन्हीं डा. मनमोहन सिंह, मोटेक सिंह, चिदम्बरम् जैसों के हाथ देश की कमान आ जाती है जो देश की अर्थनीति को किन्हीं और के इशारों पर बनाते और चलाते थे। ऐसे में यह कहना उचित नहीं है कि जनता ने प्रतिरोध नहीं किया। जनता ने हर सरकार को उलट कर एक राजनीतिक संदेश देने की कोशिश की, किंतु हमारी राजनीति पर इसका कोई असर नहीं हुआ।

एक बार फिर लोगों ने नरेंद्र मोदी की सरकार को चुनकर उन्हें भारत के स्वाभिमान को विश्वमंच पर स्थापित करने की कमान दी है। नरेंद्र मोदी जैसा कद्दावर और मजबूत नेता अगर घुटने टेकता दिखेगा तो देश किस पर भरोसा करे? रिटेल एफडीआई का सवाल बहुत छोटा सवाल हो सकता है किंतु वह इतना बताने के लिए पर्याप्त है कि हमारे राजनीतिक दल गहरे द्वंद और मुद्दों पर दिशाहीनता के शिकार हैं। बाजार की आंधी में उनके पैर उखड़ रहे हैं। वे विचारों, नीतियों और कार्यक्रमों पर खासे भ्रमित हैं। यहां तक कि सरकारों को अपनी छवि की भी परवाह नहीं है। प्रधानमंत्री अगर सत्ता संभालते हुए अपनी सरकार गरीबों को समर्पित करते हैं और साल भर में सरकार की छवि कारपोरेट समर्थक, गरीब और मध्यम वर्ग विरोधी के रूप में स्थापित हो जाए, तो उन्हें सोचना जरूर चाहिए। एफडीआई रिटेल पर भाजपा सरकार के नए रवैये पर स्वदेशी जागरण मंच, मजदूर संघ, अखिलभारतीय ग्राहक पंचायत और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की धारा के मित्र क्या सोच रहे हैं, इसे जानने में लोगों की रुचि जरूर है। उम्मीद है कि वे भी सरकार के इस फैसले के साथ तो नहीं ही होंगे।

(लेखक राजनीतिक विश्लेषक हैं)

—
— संजय द्विवेदी,

अध्यक्ष: जनसंचार विभाग,

माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय,

प्रेस काम्पलेक्स, एमपी नगर, भोपाल-462011 (मप्र)

मोबाइल: 09893598888

<http://sanjayubach.blogspot.com/>

<http://sanjaydwivedi.com/>